

किसान की अनवरत संघर्षगाथा का केंद्र बिंदु : फांस

हेमलता कुमारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर, राजस्थान
मोबाइल नंबर - 9024 3036 64

"अलग हूं मैं,

इसलिए स्वाभाविक है मेरी जिंदगी

मेरी मौत चकित कर देगी तुम्हें

बेमौसम बारिश की तरह

कविता का चहेता मेरा अस्तित्व

कापूस की फसल की तरह है

इसकी जड़ों में है मिठास

जैसे मिठास होती है 'ऊस' के तने में

मेरी मौत को कहेंगे ये, पागल है

कैसे झूल रहा है

जैसे झूलता है दरवाजे के फ्रेम में कृष्ण....."1

किसानों की दुखदगाथा पूर्ण धूल पड़ी तस्वीर वर्तमान में सभी को स्पष्ट दिखाई दे रही है। किसान की स्थिति तिल-तिल मरते हुए दयनीय हो गई है। शायद ही कोई ऐसा असहनीय प्रहार होगा जो किसानों ने न सहा होगा; प्रकृति द्वारा, जमींदारों द्वारा, एजेंसियों द्वारा, हमारी व्यवस्था द्वारा दिए हुए प्रहार कृषकों के लिए शाश्वत साबित हुए हैं।

ऐसे जड़त्व विचारों पर विचार करते हुए कथाकार संजीव की आत्मा विचलित हो उठती है। और वे पहुंच जाते हैं महाराष्ट्र के विदर्भ में जहां किसान की आत्महत्या आम बात हो गई है। वहीं से अवतरित होता है

उनका उपन्यास 'फांस'। इस उपन्यास में किसानों की भोगी हुई बदहाल जिंदगी पर अपनी सटीक नजरें टिका उन्हें आत्मसात् कर परिपक्वता की आंखों व आलोडित मन की अभिव्यक्ति को एक नया आयाम देते हैं। संजीव, उपन्यास में इस प्रश्न को बूझने का परिपूर्ण प्रयास करते हैं कि भारतीय किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही बड़ा होता है और कर्ज में ही मर जाता है आखिर क्यों ?

"सब का पेट भरने और तन ढकने वाला किसान खुद भूखा नंगा और लाचार क्यों है ? बहुत ही ज्वलंत और बुनियादी मुद्दा चुना है संजीव जैसे कथाकार ने और संभवतः प्रेमचंद के गोदान के बाद पहली बार भारतीय किसान और गांव की पूरी जिंदगी का दर्द और कसमसाहट सामने आई है। स्थानीय होकर भी वैश्विक, तात्कालिक होकर भी कालातीत।"²

आज किसानों की दयनीय दुर्दशा को देखा जाए तो भारत देश में 1995 के बाद से लगभग 3 लाख लोग आत्महत्या कर चुके हैं। 2007 से 2012 के बीच 3 करोड़ से ज्यादा किसान खेती छोड़ चुके हैं। वर्तमान में जो हमारे यहां वैश्विक अर्थव्यवस्था फलित हो रही है उसने तो इन भूमिपुत्रों को और ज्यादा हाशिए पर जा धकेला है।

यह बात सर्वविदित है कि किसान की मनोदशा को समझना सभी के लिए आज तक भी असंभव सा जान पड़ता है। संजीव इस बात को अपने उपन्यास में बताते हैं कि किसान किस प्रकार खेती करने को मजबूर है। - "दूर से दिखाई दे रहे हैं मोहन दादा, बैल बने खींच रहे हैं अपने बचे हुए खेत में, अकेला बैल हल की मूठ थाम रखी है सिंधु ताई ने वहां कोई टिटकारी नहीं, कोई फटकार का निर्देश नहीं सिर्फ एक मौन समझौता...।"³

किसान हर बार धोखे भरे थपड़े खाते हुए फिर से आशाओं के स्वप्न मन में सहलाकर खेती करने के लिए प्रयासरत हो जाता है उपन्यास में संजीव बताते हैं - "यह तीसरी बुवाई है। चुभ रही है बदरकदू धूप, चुनचुना रही है पूरी देह। हाथ में लेकर बीजों को धमका रही है छोटी- दो दो बार धोखा हो चुका है। इस बार बहना नहीं, बिलाना नहीं, सड़ना नहीं, सूखना नहीं, दगा मत देना। बरोबर जम सिल, समझाता ? बहुत मारूंगी हां, इस मीठी धमकी के बाद उसने बीजों को फिर से चूमा और रोप दिया काली माटी में।"⁴ इन धोखों की मार झेलते हुये उत्पन्न आर्थिक हानि कृषकों की कमर तोड़ देती है जिससे उभर पाना इनके लिए बहुत मुश्किल हो जाता है।

मानवता रहित एजेंसियां (बैंक, संस्थाएं) किसानों की अन्य समस्याओं को प्राथमिकता ना देकर केवल फसलों के लिए कर्जा देकर अपना पल्ला झाड़ लेती हैं। उपन्यास में संजीव कहते हैं - "उन्हें गांव के साहूकारों से कर्ज लेना ही आसान लगता है जो होता तो 10% प्रतिमाह या उससे ज्यादा, पर, वह यह नहीं पूछते कि किस लिए ले रहे हो। एक किसान को सिर्फ खेती, सिर्फ बीज, खाद, कीटनाशक, सिंचाई ही नहीं जीवन और परिवार की अन्य जरूरतें भी होती हैं - जैसे बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, बेटी की शादी, खुशी, गमी

जैसी चीजों के कर्ज सरकार से नहीं मिलते। ऐसे हालात तक ले ही आए हैं क्यों हमारे हुक्मरान हमें यहां? सारे राजनेता, सारी पार्टियों के राजनेता लगता है दलाल है उन्हीं के।"⁵

व्यवस्था पर किसानों द्वारा किया गया विश्वास उनकी महत्वाकांक्षाओं को खंडित करता हुआ दिखाई देता है। इन्हें अपने उत्पादन का सही मूल्य तक नहीं मिल पाता है जो इनकी आर्थिक स्थिति को और ज्यादा निम्न बना देता है। राष्ट्रीय स्तर पर कोई नेता नहीं होने के कारण कुछ बहुरूपिए नेता बनकर इन्हें छलते हैं - "शेतकरी अपने नेताओं को ढूंढते। नेता अदृश्य ! धैर्य चुकता जाता ! उधर पैसों की जरूरत कचोटती रहती। नेता जब तक आते शेतकरी ओना-पोना दाम लेकर जा चुके होते। जब ऐसा बार-बार होता तब शक हुआ कि इस उजले में कहीं ना कहीं कुछ काला है।"⁶

इन कठोर परिस्थितियों को झेलने के साथ ही साथ अपने जीवन मूल्य को कम आंकना, अत्यधिक व्यक्तिकरण, अभावों में कर्ज का मकड़जाल, अनापेक्षित महत्वाकांक्षाएं, लोकतांत्रिक मूल्यों की कमी, बाजार का सामाजिक व्यवहार में बढ़ता हस्तक्षेप आदि कारण बने किसानों की आत्महत्या कर लेने के। "द्रुत लाभ के लिए बीटी कॉटन जैसी ट्रांसजेनिक फसलें, द्रुत लाभ के लिए गांव का सूदखोर महाजन और ऋणदात्री एजेंसियां, द्रुत आनंद के लिए देशी दारू, अंततः द्रुत मुक्ति के लिए आत्महत्या। कब शुरू हुई और कब अलविदा कह दिया जिंदगी को। एक मरती हुई प्रजाति का नाम है किसान।"⁷

चाहे वह किसान स्त्री हो या पुरुष इन्हें तो मरने के बाद भी प्रताड़ित होना पड़ता है व्यवस्था मुआवजा ना देने के बहाने ढूंढते हुए इन्हें 'अपात्र' तक घोषित करने पर पूरी तरह आमादा हो जाती है। "पहली बार सुरेश का मर्द तनकर खड़ा हुआ- देखो साहब, तुम उसकी 'मौत' को पात्र घोषित करो या 'अपात्र' तुम्हारी मर्जी, मगर तुम्हें कोई हक नहीं कि मेरी बायको को लांछित करो। वो मुझसे ज्यादा पढ़ी-लिखी, सच्ची किसान थी। निखट्टू मैं था, शराबी मैं था, वह देवी थी- आंसू करुणा, आक्रोश में खोलते शब्द थे। मगर कुछ नहीं हुआ, महिला शेतकरी 'आशा वानखेड़े' की मौत 'अपात्र' करार दे दी गई। लिखा गया- शराबी पति के आए दिन के घरगुती के झगड़े से अजीज आकर उसने जहर पी लिया।"⁸

और तो और सभी राजनीतिक दल अपनी पार्टियों को फायदा पहुंचाने के लिए इनकी आत्महत्या को हथकंडा बनाती हैं। उपन्यास में संजीव कहते हैं - "किसानों के नाम पर अरबों रुपए लूटने हैं तो कृषक आत्महत्या, अपनी चीनी मिल लगाने का बहाना ढूंढना है तो कृषक आत्महत्या, विरोधी पार्टी को दागना है तो कृषक आत्महत्या, बहुत कारगर है कृषक आत्महत्या की तोप!"⁹ इन सब से ज्ञात होता है कि हम और हमारी व्यवस्था कितनी असंवेदनशील है। विकास के नाम पर इन कृषकों को इन ठगों द्वारा केवल ठगा जा रहा है।

किसानों द्वारा झेली यातनाओं का कच्चा चिट्ठा दिखाते हैं संजीव अपने 'फांस' उपन्यास में। "बैंग में टटोला तो ज्योतिबा फुले की पुस्तिका 'शेतकरांचा असूड' (किसान का कोड़ा) निकल आयी। एक मुड़े पन्ने पर नजर गयी - उन दिनों सरकार में नालिश करने का रिवाज नहीं था। जब इच्छा हो किसानों को पीट दो। उनके ढोर-डंगर बेच दो, सामान लूट लो, उनके रिश्तेदारों को मत छोड़ो ! उनके सिर या पीठ पर भारी पत्थर

रखकर नीचे से मिर्च से सुलगा दो, उनके गुप्तांगों में लकड़ी डालकर पीटो...। कौन करते थे ऐसा - दुष्ट साहूकार और जमींदार ! सीने में आग सी जलने लगी।"¹⁰

मीडिया भी स्वयं के लाभ व अपने चैनल की प्रसिद्धि बटोरने के लिए चकाचौंध भरी दुनिया की ओर रुख करती है। 'फांस' उपन्यास में संजीव कहते हैं "किसान आत्महत्या कोई खबर नहीं बन पाती। मीडिया की हजार-हजार आत्महत्याएं कोई खबर नहीं बन पाती। खबर बनती है मुंबई में चल रहे फैशन वीक प्रतियोगिता। 512 खबरिया चैनल जुटे हैं उसे कवर करने को मात्र 512...।"¹¹ झूठा दिखावा और विकास की अंधी दौड़ में हमारे देश का यह अन्नदाता अंधेरे में कहीं गुम हो गया है।

इस प्रकार चहुँ ओर से अनदेखी है इस भूमिपुत्र की हृदय विदारक दशा की, जो मजबूर कर देती है इसे आत्महत्या करने पर। लेकिन क्या वास्तव में ये आत्महत्याएं है या इनका टूटता हुआ मनोबल ? - "कृषक आत्महत्या महज जिम्मेदारियों से पलायन नहीं, एक प्रतिवाद भी है- कायरता नहीं, भाव प्रवणता का एक उदात्त मुहूर्त भी- पश्चाताप प्रस्थान और निर्वेद की आग में मानवता का झूलसता हुआ परचम।"¹²

संजीव अपने इस उपन्यास में पूरे देश के किसानों की संपूर्ण समस्याओं को साझा तो करते ही हैं साथ ही उनकी समस्याओं के समाधान को भी प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास करते हैं। "'फांस' खतरे की घंटी भी है और आत्महत्या के विरुद्ध दृढ़ आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना और जमीनी संजीवनी का संकल्प भी।"¹³

मुआवजे व ऋणमाफी इनकी समस्याओं का मूल हल नहीं है क्योंकि ये उपाय तो भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ चुके हैं। वास्तव में हमें इनकी बुनियादी समस्याओं के हल ढूंढने हैं। "इससे निपटने के लिए किसान और किसानों को केंद्र में रखकर योजनाएं बनानी होंगी। किसानों को आगे बढ़कर बाजार और तंत्र को अपने नियंत्रण में लेना होगा।"¹⁴

जल इनकी प्राथमिक जरूरत है जिसका सही संग्रहण करना है। संपूर्ण मद्य व नशे का निषेध, देशी बीज, देशी कंपोस्ट, देशी कीटनाशकों की व्यवस्था करना, सरकारी संस्थाओं से ऋण व्यवस्था को किसान उपयोगी बनाना, इनकी फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की नीति को व्यापकता प्रदान करना, बिजली, कृषि व सिंचाई साधनों पर सब्सिडी देकर इन्हें राहत प्रदान करना, योजनाओं का किसानों में पक्षपात पूर्ण वितरण करना, इनके स्वराज्य में इनका स्वशासन होना, व्यवस्था के प्रति इनका मुखापेक्षी ना होना आदि समाधानों से बने विकास के मॉडलों को इनके बीच में ले जाकर इनकी जरूरतों के अनुसार प्राथमिकता देकर इनकी समस्याओं से मुक्ति दिलाई जा सकती है।

इनकी बुनियादी समस्याओं के हल को सुझाना है व इस ओर सार्थक, निरंतर, तटस्थ, निष्पक्ष पूर्ण, प्रयासरत कार्य करना ही आत्महत्या करने वाले किसानों को हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

धरती का सीना फोड़कर अन्न उपजाता है,

कौन बताओ उस अन्न का वास्तव में विधाता है,
क्या वे सारे जो है भ्रष्टाचारी, पैसों के बूते
अन्न बोरियों में भरकर गोदामों में भरवा लेते,
या वे जो अथाह मेहनत कर फसल के हिस्सों का विचार करते,
जमीदारों, ठेकेदारों को देकर पता नहीं कुछ बच पाएगा,
जिससे हमारा जीवन भी कुछ सुख से कट जाएगा।
इनकी अनवरत संघर्षगाथा क्या ऐसे ही चलेगी?
सदैव ही जीवनचर्या दुखों के इन पाटों में ही पिसती रहेगी ?
क्या अब भी यह बताना है कि परिवर्तन किसमें आना है –
व्यवस्था में, जमींदारी प्रथा में, प्रकृति स्वभाव में,
अथवा

इन्हीं की राह को ये अपना, अपना छोड़े सबके लिए मोह, केवल और केवल अपने लिए सोचे, तब आएगी
अकल इन व्यवस्था के ठेकेदारों को, इनकी आशाओं, सुखों को तिजोरी में बंद करने वाले पहरेदारों को।

संदर्भ ग्रंथ-

1. संजीव, फांस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या 183
2. प्रेमपाल शर्मा, फांस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, भूमिका
3. संजीव, फांस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या 53
4. वही, पृष्ठ संख्या 99
5. वही, पृष्ठ संख्या 109
6. वही, पृष्ठ संख्या 38
7. प्रेमपाल शर्मा, फांस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, भूमिका
8. संजीव, फांस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या 145
9. वही, पृष्ठ संख्या 153
10. वही, पृष्ठ संख्या 180
11. वही, पृष्ठ संख्या 183
12. प्रेमपाल शर्मा, फांस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, भूमिका
13. वही, पृष्ठ संख्या, भूमिका
14. संजीव, फांस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या 109